THE TIMES OF INDIA

Date: 18-03-25

Find The Connect

Why Modi's approach to Trump, seen again in a podcast, is diplomatically astute

TOI Editorial

Modi's three-hour podcast with MIT scientist Lex Fridman ranged over many themes, and had some strong pointers on diplomacy. While diplomacy has always been about achieving your ends tactfully, without resorting to conflict, recent times have been marked by a reluctance to talk – and even when two sides sit across the table, coarseness of dialogue. Russia's invasion of Ukraine, China's manoeuvres on India's border, Canada baiting India, the Trump-Zelenskyy White House fiasco, Vance hectoring Europe, all fit this mould. And they fail because they push the idea of "mine before thine", taking without giving, like children.

Modi made it clear in the podcast that he also approaches diplomacy with India's interests foremost, but where he differed is in appreciating the other side's view. That's what grown-ups do. When Trump raised tariffs, Canada, Mexico and China retaliated. Europe has taken the same path. And for all practical purposes, we are in the early days of a trade war. But India has resisted the temptation to draw its gun. It has reasoned and negotiated. Modi's remark that Trump and he connect because they put their nations first may seem ho-hum, obvious. It may even seem paradoxical in the current global atmosphere. But it isn't. Solutions to tricky world challenges, be it Ukraine or Gaza or Trump's tariffs, can only be found when you see where the other side's coming from. What is the least they will accept to retreat, what is the most you can gain by losing some? A win-win, not a zero-sum game.

The take-no-prisoners approach to diplomacy fails because it starts by drawing a hard mine/thine line. Indian philosophy lays down a wiser path – approach a mutual problem without the distinction of mine and thine. The practice of samta yog – looking for essential commonalities, not apparent differences, seeing everything as a part of a larger whole – opens the mind to the bigger picture. The intent is no longer to start an argument but to find a solution. This understanding is not a sign of "softness". As Modi stressed on his Washington trip last month: "I appreciate that he (Trump) always keeps the national interest supreme. Like President Trump, it is a great fortune for me to keep the interests of India supreme and work." He's made the same point again, without riling Trump. In fact, Trump seems to appreciate Modi's view, and shared the podcast on his Truth Social handle. It's a positive start for negotiations on the many thorny issues between India and US.

Date: 18-03-25

Raising Aravalis

Green wall projects have a bad rep, Africa to China. India can learn and do the basics better

TOI Editorial

Two years ago this month, GOI launched the Aravali green wall project, to create a 5km tree line in four states, a buffer against Thar desert pushing eastwards. As hard as getting a lock on what the project's accomplished in the interim is, the need for it certainly feels more urgent than ever. Dust storms battering north India are just one of the several weather flags for the ICU-like conditions of the Aravalis. But even as the felt need for the green wall project grows, so do questions.

For example, what has it delivered for Africa, from which India has taken inspiration? In parts, such as in Niger, a lot of land has regained arability. But overall, funding and logistical difficulties have been massive stumbling blocks. As one sceptic has put it, if all the trees that had been planted in the Sahara since the early 1980s had survived, it would look like Amazonia. India likewise will have to overcome a historically poor correlation between planting saplings and growing trees. Plus, in deeply fragmented Aravalis, it will be hard to come by the 11,500 sqkm land area to be covered, about nine times the size of Delhi.

China's green wall projects have seen local officials rush to plant trees to meet targets, rather than paying attention to ecology or local engagement. All these sombre cases are cited not to discourage the Indian project, but to say that it must be more wisely executed – and to underline the necessity of doing the standard environmental toil instead of just focusing on fancier stuff. The illegal mining that's decimated one-fourth of Aravali range in Rajasthan within 50 years, for example, persists unchecked – with FIRs alone translating to more than six incidents a day in 2024. Afforestation seems a creature of the clouds, when deforestation is so rampant.

दैनिक भास्कर

Date: 18-03-25

कैंसर में टी-सेल थैरेपी एक वरदान साबित होगी

संपादकीय

कैंसर महामारी बनता जा रहा है। हर साल करीब 16 लाख लोग इससे ग्रस्त होते हैं। ऐसे में कैंसर के उपचार में आईआईटी बॉम्बे के शोधकर्ताओं और टाटा इंस्टिट्यूट के डॉक्टरों के संयुक्त प्रयास को लांसेट द्वारा वैश्विक मान्यता देना स्वागतयोग्य है। इस टी-सेल थैरेपी के क्लिनिकल ट्रायल के परिणाम देते हुए लांसेट ने बताया कि कुछ खास किस्म के ब्लड कैंसर के 73% मामलों में रोग या तो घटने लगा या रुक गया था। दुनिया में कुछ ही बड़े देश हैं, जहां जेनेटिक मोडिफिकेशन के ज्ञान और उच्च लागत के कारण इस थैरेपी का प्रयोग सम्भव हो सका है। सरकार इस प्रयोग की सफलता से इतनी उत्साहित हुई कि तीसरे क्लिनिकल ट्रायल की बाध्यता खत्म करते हुए इस थैरेपी के प्रयोग की देश के कई बड़े अस्पतालों को इजाजत इस शर्त के साथ दी कि इसके डेवलपर पेशेंट के इलाज के बाद 15 साल तक निगरानी करेंगे। इस थैरेपी में मरीज के टी-सेल (प्रतिरोधी सेल) को लेकर लैब में एक और जीन जोड़ कर नया रिसेप्टर प्रोटीन बनाया जाता है, जिसमें खास किस्म के कैंसर सेल्स को मारने की क्षमता हो। इस नए सेल को मरीज के खून में प्रवाहित किया जाता है। भारत में विकसित इस इलाज पर विदेश के मुकाबले मात्र 5% खर्च होगा। फिलहाल इस थैरेपी के जरिए प्रमुख रूप से दो किस्म के ब्लड कैंसर- लिम्फोब्लास्टिक ल्युकेमिया और लिम्फोमा - का इलाज हो रहा है। इसका पीयर रिव्यू अभी होना है।

Date: 18-03-25

अमेरिका को संयुक्त राष्ट्र से निरंतर दूर ले जा रहे हैं ट्रम्प

जयती घोष, (मैसाचुसेट्स एमहर्स्ट यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर)

व्हाइट हाउस में वापसी करने के बाद से ट्रम्प ने जितने भी भू-राजनीतिक करतब दिखाए हैं, उनमें से संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) में अमेरिका की वोटिंग उनकी मंशाओं के बारे में सबसे अधिक खुलासा करने वाली थी।

सबसे पहले तो अमेरिका ने एक ऐसे नेक इरादे वाले प्रस्ताव का विरोध किया, जो अंतरराष्ट्रीय शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व दिवस की स्थापना करना चाहता था और जो सस्टेनेबल-डेवलपमेंट के लिए यूएन के 2030-एजेंडे को पुख्ता बनाता था।

यह एक प्रतीकात्मक प्रस्ताव भर था, इसके बावजूद अमेरिका ने इसके खिलाफ मतदान किया। उसके प्रतिनिधि एडवर्ड हार्टनी ने स्पष्ट किया कि अमेरिका एजेंडा-2030 और सस्टेनेबल-डेवलपमेंट के लक्ष्यों को अस्वीकार करता है।

बहरहाल, अमेरिकी विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव भारी बहुमत से पारित हो गया। 162 देशों ने इसके पक्ष में मतदान किया, दो देश मतदान से दूर रहे तथा केवल तीन देशों- अमेरिका, इजराइल और अर्जेंटीना ने इसके खिलाफ मतदान किया।

बाद में अमेरिका ने अंतरराष्ट्रीय आशा दिवस और अंतरराष्ट्रीय न्यायिक कल्याण दिवस की स्थापना के लिए आमंत्रित किए गए संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्तावों का भी विरोध करते हुए अपनी आवाज दोगुनी कर दी। शिक्षा के लिए सभी के अधिकारों की पुष्टि करने वाले प्रस्ताव के खिलाफ एकमात्र वोट भी अमेरिका का ही था, जिसमें युवा महिलाओं सहित युवाओं के लिए समान अवसरों के महत्व पर प्रकाश डाला गया था।

कारण? संभवतः क्योंकि यह ट्रम्प प्रशासन के घरेलू एजेंडे के एक आधारस्तम्भ के प्रतिकूल था : विविधता, समानता और समावेश के कार्यक्रमों को खत्म करना।

ये कदम संयुक्त राष्ट्र से अमेरिका के बाहर निकलने का पूर्वाभास देते हैं, जिसका कि इलॉन मस्क और अन्य ट्रम्प समर्थकों ने भी आग्रह किया है। ट्रम्प पहले ही विश्व स्वास्थ्य संगठन से अमेरिका को बाहर निकाल चुके हैं और उन्होंने पेरिस जलवायु समझौते को भी त्याग दिया है।

उनके प्रशासन ने मानवाधिकार परिषद (यूएनएचआरसी) और फिलिस्तीनी शरणार्थियों के लिए राहत और कार्य एजेंसी सहित संयुक्त राष्ट्र के कई निकायों से अमेरिका को वापस ले लिया है। वह यूनेस्को में अपनी भागीदारी पर भी पुनर्विचार कर रहा है।

अमेरिका की ये कार्रवाइयां- साथ ही यूक्रेन पर रूस के आक्रमण की निंदा करने वाले प्रस्ताव का विरोध- यह दर्शाता है कि ट्रम्प प्रशासन केवल कुछ अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से ही नाखुश नहीं है। बल्कि यह मूलतः किसी भी बहुपक्षीय ढांचे का विरोधी है, जो देशों के बीच समानता का सुझाव देता हो।

कुछ विश्लेषकों का तर्क है कि यूएन से अमेरिका का पूरी तरह से हटना असंभव है, क्योंकि उसकी सुरक्षा परिषद में अमेरिका का वीटो बहुत प्रभाव रखता है। लेकिन भू-राजनीति के प्रति ट्रम्प के दृष्टिकोण को देखते हुए- जहां कूटनीति नहीं ताकत ही मायने रखती है- वह भी गैर-जरूरी लग सकता है।

यदि अमेरिका यूएन से बाहर निकलता है तो इसके वित्तीय परिणाम गंभीर हो सकते हैं। यूएन के सबसे बड़े फाइनेंशियल समर्थक के रूप में अमेरिका ने 2022 में रिकॉर्ड 18.1 अरब डॉलर का योगदान दिया था, जो संगठन के कुल वित्त-पोषण का लगभग 20% है।

इसमें से भी 70% से अधिक हिस्सा यूएन की चार संस्थाओं को गया था : 40% विश्व खाद्य कार्यक्रम को, 12% शरणार्थी उच्चायुक्त को, 10% यूनिसेफ को और 10% शांति अभियान विभाग को। और चूंकि इस फंडिंग का अधिकांश हिस्सा यूएसएड के माध्यम से आता था, जिसे ट्रम्प ने बंद कर दिया है, तो शायद यह फंडिंग भी पहले ही समाप्त हो चुकी हो। यह यूएन प्रणाली के लिए एक बड़ा झटका है और इसके परिणामस्वरूप उसके कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम अब खतरे में हैं।

ट्रम्प प्रशासन ने मनमाने एकतरफावाद और दबाव की रणनीति के प्रति अपने झुकाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया है। वह अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से काम करने के बजाय देशों को धमकाने के लिए अपने दमखम का उपयोग कर रहा है।

जब दुनिया की अग्रणी महाशक्ति ही वैश्विक सहयोग से मुंह मोड़ने लगेगी तो बहुपक्षीय शासन की वह प्रणाली- जिसे अमेरिका ने लगभग आठ दशक पहले स्थापित करने में मदद की थी- बिखरने लग सकती है। इसका उलटा भी सच है।

ट्रम्प के कारण दुनिया के अन्य देश अधिक निकटता से मिल-जुलकर काम करने के लिए प्रेरित भी हो सकते हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है। चाहे व्हाइट हाउस कितने भी जोरदार तरीके से इसका खंडन क्यों न करे, लेकिन मानवता के समक्ष आज मौजूद सबसे बड़ी चुनौतियां वैश्विक प्रकृति की ही हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 18-03-25

उत्सर्जन नियंत्रण में ऊहापोह के क्षण

अजय शाह

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग की बात करें तो बहुत निराशा दिख रही है। चिंता की चार वजहें नजर आ रही हैं।

1. हममें से कई लोग डेनियल येरगन की 1990 में आई किताब 'द प्राइज' पढ़ते हुए बड़े हुए, जिसमें तेल उद्योग की बात की गई है। हाल ही में फॉरेन अफेयर्स पत्रिका में लिखते हुए येरगन/ऑर्जाग/ आर्या ने दलील दी कि ऊर्जा का बदलाव सही ढंग से नहीं हो रहा है। यह बात ट्रंप के पद संभालने से पहले ही कह दी गई थी। वे हमें याद दिलाते हैं कि दुनिया भर में इस्तेमाल हो रही ऊर्जा में हाइड्रोकार्बन की हिस्सेदारी बहुत कम घटी है। उनका हिस्सा 1990 में 85 फीसदी था और आज भी 80 फीसदी है।

2. दुनिया में आजकल चल रहे लोकलुभावनवाद और जलवायु परिवर्तन के बीच अजीब रिश्ता है। अब हम पीछे मुड़कर देख और समझ सकते हैं कि इंटरनेट ने हमें सोशल मीडिया दिया, जिसने लोगों की सोच को नुकसान पहुंचाया। उसने अतिवाद या चरमपंथ को हवा दी। इससे लोग षड्यंत्र के सिद्धांतों और छद्म विज्ञान के बहकावे में आ सकते हैं तथा संस्कृतिकरण में रुकावट आती है। ट्रंप के शासन में अमेरिकी सरकार कार्बन कम करने के विरोधी रहे रूस और सऊदी अरब की सरकारों के साथ खड़ी हो गई है।

3. कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन पर नियंत्रण दुनिया भर की भलाई के लिए है। इसके लिए समझदारी भरी विश्व व्यवस्था की जरूरत है, जहां सभी देशों को इस दिशा में कंधे से कंधा मिलाकर चलने के लिए विदेश नीति का इस्तेमाल किया गया। मगर ट्रंप, व्लादिमीर पुतिन, शी चिनफिंग जैसे गुस्सैल नेताओं की सरकारें इस माहौल में अपने फायदे के लिए मनमानी कर रही हैं, जिससे विदेश नीति और आर्थिक कूटनीति जैसे बारीक काम करना बहुत मुश्किल हो गया है।

दुनिया यूक्रेन पर पुतिन के हमले और ताइवान या भारत पर शी के हमलों की आशंका जैसी ज्यादा जरूरी समस्याओं से जूझ रही है।

4. दुनिया में गर्मी बढ़ रही है और खबरें तथा आंकड़े बता रहे हैं कि इंसानी समाज पर इसके कितने बुरे असर हो रहे हैं। वैज्ञानिकों ने अरसे तक चेतावनी दी कि दुनिया का औसत तापमान औद्योगीकरण से पहले वाले दौर की तुलना में 1.5 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा नहीं बढ़ने दिया जाए। अब लगता है कि 1.5 डिग्री नहीं बल्कि 2 डिग्री सेल्सियस से भी ज्यादा इजाफा हो जाएगा।

नीतिगत कदमों के जरिये हमें इतना समझदार बनाने वाले सभी शानदार लोग अब डर और हताशा में हैं। इस स्थिति को हम कैसे समझें? आगे क्या रास्ता है? क्या हम जलवायु परिवर्तन की विभीषिका की ओर बढ़ रहे हैं या कुछ बेहतर किया जा सकता है?

बहुत संभव है कि 1.5 डिग्री सेल्सियस या 2 डिग्री सेल्सियस की दीवार भी टूट जाए। ऐसे में जलवायु के हिसाब से खुद को ढालना जरूरी है। कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन को रोकना है या नहीं और रोकना है तो कैसे रोकना है, इस पर आप कुछ भी सोचते हों यह समझना जरूरी है कि दुनिया गर्म हो रही है और हमारी जिंदगी पर इसके बहुत बुरे प्रभाव होने जा रहे हैं। गर्म होती दुनिया का हर व्यक्ति, हर कंपनी और हर सरकारी संगठन की नीतियों और तैयारियों पर दूरगामी प्रभाव होगा। मसलन हम सभी को तटवर्ती इलाकों में रियल एस्टेट के दामों पर बहुत सतर्कता बरतनी चाहिए।

कार्बन कम करने का क्या? क्या मामला हाथ से निकल गया? हम हार मान लें, कोयला जलाएं और मंगल पर जिंदगी की योजना बनाएं? हमें यह तो मानना होगा कि आज बहुत मुश्किलें हैं मगर चार वजहों से भविष्य बेहतर हो सकता है।

1. अतीत में वैज्ञानिक तर्क देकर बताया गया कि कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन से भविष्य में नुकसान होगा। आने वाले खतरे को बुद्धिमान लोग ही समझ सकते थे। मगर 2025 में हर किसी को दुनिया में हो रहे बदलाव दिख रहे हैं। भारत में कृषि और मवेशियों को गर्म रातों से नुकसान हो रहा है। अब यह किताबी बात नहीं रह गई बल्कि हकीकत बन गई है। इसलिए सोशल मीडिया के जरिये थोपा जा रहा लोकलुभावनवाद और प्रचार वाकई दिक्कत है और ज्यादा से ज्यादा लोग इसे समझ भी रहे हैं।

2. येरगन/ऑर्जाग/आर्या का पलटकर देखना और निराश होना बनता है। मगर भविष्य के लिए हमें बहुत बड़े पैमाने पर सोचना होगा। नवीकरणीय ऊर्जा और भंडारण की कीमतें क्षमता बढ़ने के साथ घटती जाएंगी। अमेरिका और रूस की सरकारें अब इसे रोक नहीं सकतीं। यह सही है कि अतीत में धीमा फायदा हुआ है मगर निकट भविष्य में भारी लाभ होने जा रहा है। भारत में तेज धूप होती है और कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन कम करने से परे अपना हित सोचें तो भी स्वच्छ ऊर्जा ही रास्ता है।

3. यह न माना जाए कि अमेरिकी दक्षिणपंथ हमेशा रहेगा। जनमत सर्वेक्षण, उपभोक्तों के भरोसे के पैमाने और वित्तीय बाजार बता रहे हैं कि उम्मीद किस तरह घट रही है। हो सकता है कि 2026 में विधायिका का नियंत्रण दूसरे हाथों में चला जाए। 2026 के चुनाव नतीजे न सोचें तो भी अमेरिकी दक्षिणपंथ का चरमवाद उन लोगों को लोकतंत्र और जन नीतियों की अहमियत समझा देगा, जो अभी तक सोशल मीडिया के प्रभाव में अतिवाद को बढ़ावा दे रहे थे। उम्मीद है कि आगे बेहतर दौर आएगा।

4. लंबे अरसे तक कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन के साथ 'दुनिया के लोगों की भलाई' और 'साथ में आने वाली समस्याओं' जैसे जुमले सुनाई देते रहे। श्रीलंका का हित इसके बेरोकटोक उत्सर्जन में है क्योंकि वैश्विक उत्सर्जन में उसका बहुत कम हाथ है। मगर भारत जैसे बड़े देश के लिए हिसाब बदल जाता है। वैश्विक उत्सर्जन में 10 फीसदी भारत से ही आता है। भारत के लिए उत्सर्जन कम करना ही सही है क्योंकि बढ़ती गर्मी इसकी आबादी को बहुत नुकसान पहुंचा रही है। यहां उत्सर्जन घटाना महंगा भी नहीं पड़ रहा। दुनिया के चार बड़े आर्थिक खेमों - अमेरिका, चीन, यूरोपीय संघ और भारत के लिए यह बात मायने रखती है। अमेरिका अभी सियासत में फंसा है मगर बाकी तीनों नहीं। उदाहरण के लिए यूरोपीय संघ और ब्रिटेन में कार्बन बॉर्डन टैक्स पर अभियान चलता रहेगा।

जनसत्ता

Date: 18-03-25

सहयोग का मोर्चा

संपादकीय

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तेजी से बदलते भू- राजनीतिक समीकरणों के दौर में भारत और न्यूजीलैंड के बीच सहयोग की जो नई संभावनाएं बनी हैं, वे कई लिहाज से महत्त्वपूर्ण हैं। गौरतलब है कि न्यूजीलैंड के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान सोमवार को दोनों देशों के बीच रक्षा, शिक्षा, खेल, बागवानी, वानिकी के क्षेत्रों में अहम समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए। वार्ता के बाद दोनों देशों के बीच पारस्परिक रूप से लाभकारी मुक्त व्यापार समझौते की ओर कदम बढ़ाने का निर्णय लिया गया, ताकि आपसी व्यापार और निवेश की संभावनाओं को बढ़ावा दिया जा सके। रक्षा और सुरक्षा साझेदारी को मजबूत और संस्थागत बनाने के फैसले के तहत संयुक्त अभ्यास, प्रशिक्षण के साथ-साथ रक्षा उद्योग में सहयोग की संभावनाएं बनाई जाएंगी। कूटनीति के समांतर सौहार्द के मोर्चे को भी मजबूत करने के लिए अगले वर्ष दोनों देशों के बीच खेल संबंधों के सौ वर्ष पूरा होने का उत्सव मनाने का भी निर्णय लिया गया है।

आतंकवाद, अलगाववाद और कट्टरपंथ वैश्विक स्तर पर आज जटिल समस्या बन चुके हैं। ऐसे में सीमित स्तर पर ही सही, न्यूजीलैंड में कुछ अवांछित तत्त्व जिस तरह भारत के खिलाफ अपनी गतिविधियां चलाते रहे हैं, वह एक बड़ी चिंता का कारण रहा है। हालांकि ऐसे अवैध तत्त्वों के खिलाफ न्यूजीलैंड सरकार ने कार्रवाई की है, लेकिन अब इस मसले पर सहयोग को और मजबूत करने की कोशिश होगी। ऐसे में भारत और न्यूजीलैंड के बीच साझेदारी आतंकवाद के खिलाफ युद्ध की एक अहम कड़ी है। इसके अलावा, भारत और न्यूजीलैंड के बीच समूचे हिंद-प्रशांत जैसे बड़े क्षेत्र में सुरक्षा की स्थिति और इसके विकास में सहयोग के मुद्दे सहित रूस-यूक्रेन युद्ध की वजह से उपजे परिणामों के मसले पर पहले से संभावनाओं की तलाश जारी थी, लेकिन दोनों देशों के बीच हुई ताजा वार्ता के बाद सहयोग के मोर्चे पर तस्वीर ज्यादा साफ हुई है । भारत के लिहाज से यह समझौता इसलिए ज्यादा मायने रखता है कि फिलहाल वैश्विक महाशक्ति माने जाने वाले देशों के बीच जिस स्तर की कूटनीतिक खींचतान चल रही है, उसमें भारत के लिए अपनी स्थिति को अलग-अलग स्तर पर मजबूत करना वक्त का तकाजा है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 18-03-25

पाकिस्तान का संकट

संपादकीय

पाकिस्तान के पेशावर में प्रशासन ने ईद के मौके पर पटाखों और खिलौना बंदूकों की बिक्री पर प्रतिबंध लगा दिया है। जाहिर है, इस फैसले के पीछे लगातार हो रहे आतंकवादी हमलों से उपजा हिंसा और भय का माहौल है। इस प्रशासनिक कदम से कोई बड़ा फायदा होगा, ऐसा तो नहीं लगता, अलबत्ता यह खबर पाकिस्तान में अराजकता की स्थिति और सरकार की लाचारी का प्रतीक जरूर लगती है। पाकिस्तान में पिछले दिनों जैसे ताबड़तोड़ आतंकी हमले हो रहे हैं, उनसे फिर यह सवाल मौजूं हो उठा है कि एक राष्ट्र के तौर पर यह कितना स्थिर और मजबूत है? पाकिस्तान की अस्थिरता और इसके बिखराव का खतरा पिछले कुछ दशकों से अंतरराष्ट्रीय समुदाय की चिंता का विषय बना हुआ है। खास तौर पर जैसे-जैसे अमेरिका की दिलचस्पी इस क्षेत्र में कम हुई है और पाकिस्तान का रणनीतिक महत्व उसके लिए कम हुआ है, तब से पाकिस्तानी व्यवस्था में आंतरिक स्थिति को संभालने की इच्छाशक्ति भी बहुत मजबूत नहीं लग रही है। फिर जिस तरह की राजनीति पाकिस्तान में चल रही है, उसमें देश को संभालने के बजाय आपसी हिसाब चुकता करने पर ज्यादा जोर है। पिछले कुछ वर्षों से यह साफ दिख रहा है कि जो सेना कभी पाकिस्तान में सर्वशक्तिमान नजर आती थी, वह भी अब स्थिति को संभाल नहीं पा रही।

पिछले दिनों जो बड़े आतंकी हमले हुए हैं, उनके निशाने पर सेना ही है। बलूच लिबरेशन आर्मी और तहरीके -तालिबान पाकिस्तान पाकिस्तानी सेना पर हमले करते रहते हैं और सेना अक्सर उनके आगे असहाय नजर आती है। किसी वक्त में तमाम गड़बड़ियों के बावजूद पाकिस्तानी सेना का संगठन अनुशासित और पेशेवर था, वह अब वैसा नहीं रहा। भ्रष्टाचार व कट्टरपंथी धार्मिक हस्तक्षेप से सेना का पेशेवर अनुशासन प्रभावित हुआ है, इसीलिए आतंकवादी उसके खिलाफ बेखौफ कार्रवाइयां करने लगे हैं। पिछले कुछ वक्त से बलूच अलगाववादी ताकतों के हमले लगातार बढ़ते जा रहे हैं और फिलहाल ऐसी कोई संभावना नहीं दिखती कि आने वाले वक्त में हालात कुछ बेहतर हो सकेंगे। सेना के सहारे स्थिति पर नियंत्रण करना मुश्किल मालूम देता है, क्योंकि बल प्रयोग से स्थानीय बलूचों में अलगाव की भावना और बढ़ेगी। दूसरी ओर, समस्या के राजनीतिक समाधान की कोशिश करने की स्थिति में पाकिस्तानी राजनीतिक वर्ग नहीं है, बल्कि ऐसी गंभीर कोशिश कभी हुई ही नहीं।

बलूच लोगों के अंसतोष का एक पक्ष चीन भी है। चीन की पहुंच हिंद महासागर तक नहीं है, इसलिए उसने बलूचिस्तान में ग्वादर बंदरगाह को विकसित किया है और वहां से राजमार्ग बना रहा है, ताकि समुद्री रास्ते से आया सामान चीन तक पहुंच सके। बलूच लोगों की इस परियोजना में कोई हिस्सेदारी नहीं है, न ही उन्हें साथ लेने की कोई कोशिश की गई है। चीनी सत्ता का स्वभाव भी ऐसा नहीं कि वह लोकतांत्रिक तरीके से स्थानीय लोगों को साथ लेने की कोशिश करे। ऐसे में,

पाकिस्तानी सत्ता प्रतिष्ठान के साथ-साथ चीन पर भी स्थानीय लोगों का गुस्सा बढ़ रहा है और परियोजना में काम करने वाले चीनी लोगों पर अक्सर हमले होते रहते हैं। समस्या यह है कि इन सभी मसलों का कोई आसान हल नहीं है, लेकिन जिन पक्षों पर इनको हल करने की जिम्मेदारी है, वे अब भी या तो गंभीर नहीं हैं या लाचार नजर आते हैं। आतंकियों के साथ-साथ कट्टरपंथियों से निपटे बिना हालात सुधर नहीं सकते। पर क्या पाकिस्तान में इतनी इच्छाशक्ति बची है?